समकालीन कविता के पुराने–नए कवियों की संवेदना का प्रगतिशील चरित्र

डॉ० ललिता कुमारी

मगध विश्वविद्यालय, बोधगया।

फंतासी केवल मुक्तिबोध की ही अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं थी। स्वतंत्र भारत की गरीबी, बेकारी, शोषण का भ्रष्टाचार और अनैतिकता के गहरे होते जाने से प्रगतिशीलता के बाहर भी हिन्दी कविता धारा में यथार्थ को व्यक्त करने के लिए फंतासी को माध्यम बनाने वाले विजयदेव नारायण शाही हुए हैं। भयानक खवर, आतंक, बेचैनी के बिम्ब साही के काव्य में भी है, लेकिन चूंकि साही प्रतिबद्ध नहीं है, इसलिए उनके काव्य में पूंजीवादी व्यवस्था के पोषक और फासिष्ट शक्ति का विरोध नहीं है। समकालीन कविता धारा के समानांतर नरेश मेहता मानवीय सरोकार की आध्यात्मिक स्पर्श की कविता लिख रहे थे तो धर्मवीर भारती रोमानी प्रगीत में मस्त थे। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना अस्तिववाद और लोकवाद की मिली–जुली कविता लिख रहे थे। यह सच है कि लोकवाद के अन्तर्गत उनमें ग्रामीण जीवन के मानवीय और प्राकृतिक परिवेश मजबूती से आए हैं। मूल रूप से अस्तित्ववादी काव्य प्रवृति के अतिरिक्त सर्वेश्वर दयाल में जी उल्लेखनीय प्रवृति प्रत्यक्ष है वह है यथार्थ वादकों मानवीय आधार पर ग्रहण करने की सहजता। मानव की गारिमा की रक्षा, स्वाधीनता, युद्धविरोध और इंसान की शक्ति में आस्था उनकी काव्यभूमि की विशेषता है। कुँवर नारायण, रघुवीर सहाय, राजकमल चौधरी, श्रीकांत वर्मा, धूमिल, केदारनाथ सिंह, चन्द्रकांत देवताले, विनोद कुमार शुवल, लीलाधर जगूड़ी, राजेश जोशी, मंगलेश डबराल, आलोक धन्वा, ज्ञानेन्द्रपति, विष्णु नागर, उदय प्रकाश, अरूण कमल, निलय उपाध्याय, कुमार अम्वुज बद्रीनारायण, प्रेमरंजन अनिमेष, आशंतोष दुबे और पचासों अन्य कवि हिन्दी कविता की समकालीन धारा को युग के अनुकूल अपने अनुभव और जागतिक अनुभूति से जो लिख रहे हैं, जिसमें अनेक प्रगतिशील भी हैं और हिन्दी की काव्यधारा को इनसे नया मुहावरा भी मिला है। लेकिन प्रगतिशील चेतना की जो एक नई रेखा, नया मतलब ख्यात्नाम प्रगतिवादी कवियों की पुरानी पीढ़ी ने खींची है, जिसमें केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, शिवमंगल सिंह सुमन, मुक्तिबोध, नागार्जुन और त्रिलोचन शास्त्री ही है। इनमें प्रकृति, प्राकृतिक जीवन, ग्रामीण परिवेश, प्रेम, धरती की गन्ध, फसलों की झूमती–मस्ती, किसानों की दशा, मजदूरों की श्रम शक्ति का शोषण, व्यवस्था का टुच्चापन और मानवीय सरोकार की व्यापकता है। अतः प्रगतिशील कविता धारा वस्तुवादी संवेदना के विकास में इनका योगदान उल्लेखनीय है। यह सत्य है कि राजेश जोशी, उदय प्रकाश और अरूण कमल हिन्दी कविता के तीन वामपंथीय कवि हैं

जिन्होंने कविता के नए मुहावरे बनाए पर उसी जमीन पर कविता लिखी जो केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन ने तैयार की थी।

प्रगतिशीलता साहित्य का बुनियादी मूल्य है और प्रगतिशील काव्य में व्यक्त यथार्थ जीवन दृष्टि है। अतः, जीवन दृष्टि के रूप में यथार्थ को स्वीकार करने भर से ही गैर प्रतिबद्ध कवि भी प्रगतिशील होने लगते हैं। विनोद कुमार शुक्ल समकालीन कविता के महत्त्वपूर्ण कवि के रूप में अपनी काव्यशैली के लिए ख्यात् इसीलिए प्रगतिशील महसूस होते हैं। शमशेर बहादुर की तरह मितकथन में संकेत की व्यापकता इनके कथ्य की खास विशेषता है। न शोर, न चिल्लाहट, न गुस्सा, न आक्रोश, न क्रोध की भाषा, संयम और संक्षिप्त कथन में यथार्थ को रख देने की अद्‌भुत कला है विनोद कुमार शुक्ल के पास। इनकी एक कविता के कुछ अंश हैं

दफ्तर में छः बजे छुट्टी होती है

जो सात बजे हुई साधारण;

सब के साथ घर जाने को बस के लिए खड़ी,

दफ्तर की लड़की को अचानक,

चार गुंडे आकर जबरदस्ती ले जाने लगे,

तभी बस आई।

बस में बैठे लोग यह देख रहे थे।

तब दफ्तर के लोग भी उसी बस में बैठ गए। दफ्तर में लड़की के साथ काम करने वाले और बाहर के लोग भी अमानवीय आचरण को देखकर हस्तक्षेप नहीं कर सके असुरक्षा का, दहशत का, अमानवीयता का, मानवीय संवेदना के ह्रास और क्षरण का यथार्थ के साथ व्यवस्था और सामाजिक वातावरण का चित्र खुल जाता है? विष्णु खरे कहानी में कविता कहते हैं। हिन्दी की प्रचलित काव्य–भाषा के फार्म को तोड़ते हुए काव्य भाषा के नए फार्म निर्मित करते हुए प्रतिरोध की सशक्त कविताएँ लिखी हैं। साम्प्रदायिकता और फासिष्ट शक्ति के समाज में बढ़ते जाने की चिंता में बेचैन खरे ने मजबूती से इनका विरोध करते हुए व्यंग्यात्मक कविताएँ दी हैं, जिसमें स्थिति की जटिलता के चित्रण हैं। घूमिल भारतीय जनतंत्र की असफलता पर प्रहार करते हुए प्रतिरोध की भाषा–बौद्धिकता से कविता लिखते थे। लीलाधर जगूड़ी का यथार्थ घूमिल की तरह ही, बौद्धिक भाषा में व्यक्त होता था, जिससे कठिन सौन्दर्य के स्रष्टा के रूप में हिन्दी पाठकों के बीच जरूर आए, पर असहज ही बने रहे। राजेश जोशी की कविता

की भाषा असहजता और बौद्धिकता को काटती हुई रोमानीपन के साथ यथार्थ को लेकर आई। राजेश जोशी की कविताओं में बार–बार पहाड़ आते हैं। उनका रोमान फैंटेसी की हद तक जाता है, पर देखे हुए स्थिति जगत् और अनुभूति की वास्तविकता को धुंधला नहीं करता चन्द्रकांत देवताले अकविता के कवि है, पर प्रगतिशीलता उनकी पहचान है। फिर भी देवताले की कविता की जमीन की असली पहचान आत्परकता और प्रेम के मुहावरे हैं। निराशा, पराजय बोध मृत्युकामना इतनी अधिक है कि सिनिसिज्म जैसा लगने लगता है। हाँ वर्तमान परिवेश की अभिव्यक्ति के बिम्ब वाली ढेरों कविताएँ उन्हें यथार्थ के निकट ले जाती हैं। मंगलेश डबराल धूमिल की पीढ़ी के कवि रहे हैं। लेकिन इनकी कविताओं में घूमिल बाली भाषा की फुफकार और मयार्दाहीन शब्दावली से युक्त घातक प्रहार वाले उपमान नहीं मिलते। विचार से ये कविता बुनते हैं, जिसमें क्रोध और आक्रोश का अभाव है। लेकिन इनके वैचारिक आरोपण कृत्रिम नहीं है, बल्कि इन्होंने ठोस यथार्थ और सूक्ष्म संवेदना से वैचारिक विघात को ध्वस्त करके जीवन की कविता लिखी है। संयम, सावधानी और संकेत में बहुत बड़ी बात । कहने की इनकी कला अन्य समकालीन से इन्हें अलग करती है। सामाजिक यथार्थ को कलात्मक रूप देने वाले हिन्दी की उस पीढ़ी के ये बड़े कवि हैं। इनमें साम्प्रदायिकता के प्रति अरूचि और घृणा से भरे हुए उर्वर संवेदना से मानवीय प्रबन्धन कौशल के विचार से भरे हुए कवि हैं। एक उदाहरण ले–

सेनाएँ कट मरेंगी हत्यारा जीतेगा

हर बार जीतने के बाद

लाशों के बीच अकेला खड़ा

हत्यारा कहेगा

अब मैं जाता हूँ बुद्ध की शरण में।

1967 के नक्सलवादी आन्दोलन से प्रभावित हिन्दी के युवा कवि आलोक धन्वाने जन जातियों और किसानों में भूमिपतियों के खिलाफ अपने वैचारिक क्रोध को कविता में यथार्थ के रूप में रखा था। गोली दागो पोस्टर जनता का आदमी ऐसी दो कविताएँ बहुत चर्चित हुई थी। इस पर बिना बहस के यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि आलोकधन्वा की पहचान उनकी एक–एक कविता से है। लेकिन नक्सलवादी आन्दोलन की वैचारिक भूमि संदिग्ध हो उठी है। कहने की जरूरत नहीं कि आलोकधन्वा में कोमल संवेदना ने जगह बना लिया है। आलोक धन्वा लिखते हैं:–

मैं क्यों नहीं लिख पाता हूँ वैसी कविता

जैसी बच्चों की नींद होती है

खान होती है

पके हुए जामुन का रंग होता है

मैं वैसी कविता क्यों नहीं लिख पाता

जैसी माँ के शरीर में नए पुआल की महक

होती है।

हाथी के निशान जैसे गंभीर अक्षरों में

जो कविता दीवारों पर लिखी होती है

कई लाख हलों के ऊपर खुदी हुई है जो

कई लाख मजदूरों के टिफिन–कैरियर में

ठंडी कमजोर रोटी की तरह लेटी हुई है

जो कविता।

उन्हें पश्चाताप है कि आक्रामक यथार्थ से उनकी कविता क्यों भटक गई और क्यों ओस कोमल संवेदना से भरी कविता लिखने लगे! हालांकि आलोक धन्वा की कविता में संवेदना की पीड़ा, स्मृति का दंश उनकी वैयक्तिक जीवन में आई उनकी पत्नी को छोड़कर चल देना है। उन्होंने लिखा–

वह जितने दिन मेरे साथ रही

उससे ज्यादा दिन हो गए

उसे गए।''

उदय प्रकाश की कविता की जमीन उर्वर इसलिए है, क्योंकि मुनष्य के भविष्य की चिंता इस पीढ़ी में सर्वाधिक उन्हीं की कविताओं में है। अमानवीयता और वर्तमान समय मे स्त्री की प्रताड़ना उन्हे बेचैन करती है। जनतंत्र का सही चेहरा देखना हो, स्त्री की विवशता और साधारण जन के द्वारा उस पर हो रहे अत्याचार से परिचित होना हो तो उदय प्रकाश की संवेदना की आँख से देखकर मन हिल उठता है। अरूण कमल में गजब का यथार्थ है। जो कुछ उन्होंने देखा है, उसे महसूस किया है, उसी को कविता का विषय बना लिया है। संत्रास, असुरक्षा, दहशत और जीवन की दैनंदिन की अनुभूत त्रासदी का यथार्थ अरूण कमल में है। अरूण कमल संवेदनशील कवि हैं, उन्होंने यथार्थ को जिया है। लोक

की इच्छा, लोक की पीड़ा, जन चेतना और सत्ता की विफलता का बयान मितकथन द्वारा, संकेत से करते है। अरूण कमल कविता का विषय दैनेदिन की देखी हुई घटनाओं से बनाते हैं लोक और लोकभाषा को समृद्ध करने का काम कर रहे है। अरूण कमल । अरूण कमल कैसे कविता बनाते है, इसकी एक वानगी है रेल की बात। रेल में अरूण जी ने बातचीत सुनी है–

आदमी कहाँ से कहाँ पहुँच गया

आज कोई ऐसी बीमारी न हो जिसकी दवा नहीं हो

जल्दी ही ऐसी तरकीब आ रही है कि आदमी

कभी मरे ही नहीं।

और अगर मर भी जाए तो हू–बहू वैसा

ही आदमी बन जाए

सामने वाली सीट बैठे आदमी ने जोर की

साँस ली और बोला

''हमको तो बस साफ पानी चाहिए भाई जी''।

ऐसे कविता रचते हैं अरूण कमल । उँगली रखकर यह बताना संभव है कि कविता बस इस पंक्ति में है। पूरे कथन को केन्द्रित करके कथ्य को मजबूत बनाते हुए अपनी संवेदना को कस देते हैं अरूण कमल, बहुत ही सहज भाषा में।

समकालीन कविता की पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी की प्रगतिशील चेतना में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन कवियों ने मानव सभ्यता के संकट को वाणी दी है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक घटनाओं से प्रतिकार करते हुए मानवीय हित में उनसे छाँटकर कविता के विषय बनाए हैं। साम्प्रदायिकता के प्रति आक्रामक रूख अपनाते हुए भगवा विग्रेड की नीति पर देशहित में संकीर्णता से ऊपर उठकर कविता में मानवीय जमीन बनायी है। छोटे छोटे विषय, दैनंदिन की घटनाएँ, प्रेम भी इनके विषय बने है। यथार्थवादी चिंताधारा के विकास में इन कवियों ने दार्शनिक ऊँचाई की गंभीर बातों से बचते हुए घर, परिवार और समाज की संज्ञापरक कविता की हैं। पर्यावरण, गाँव की धूल की महक, ग्रामीण जीवन की दशाओं का स्थिति चित्र, किसान और खलिहान की उपस्थिति इनकी कविताओं में अपेक्षाकृत कम हैं। मानुषिक संकट की प्राकृतिक कृत्रिमता से ऊपर उठकर अपेक्षाकृत उतर आधुनिकता और भूमंडलीकरण

के प्रभाव से चमकते हुए बाजार पर महत्त्वपूर्ण कविताएँ हुई हैं। जातीय स्मृति, स्त्रीपीड़ा, जनजातियों को दर्द की कविताएँ आन्दोलनगत सफलता के रूप में नोटिस की जाने योग्य है। स्त्री–विमर्श और आदिवासी जातियों की पारिवारिक, सामाजिक दशा का जैसा चित्रण उपन्यासों में है, वैसा कविताओं में नहीं। फिर भी उपेक्षित यथार्थ काव्य में मुखर है।

संदर्भ

1. केदारनाथ अग्रवाल : पंख और पतवार, परिमल प्र0, 1974 ई0 भूमिका से उद्धृत।
2. वही, परिमल प्र0, 1974, पृ0 37
3. शमशेर बहादुर सिंह : उदिता' अभिव्यक्ति का संघर्ष', 1980, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, भूमिका से उघृत।
4. शमशेर बहादुर सिंह : कुछ कविताएँ : कुछ और कविताएँ – दिल्ली; राधाकृष्ण प्र0, दूसरी आवृति, 2004, पृ0 40
5. शमशेर 'दूसरा सप्तक' सं0 अज्ञेय, वक्तव्य, पृ0 42
6. शमशेर : काल तुझसे होड़ है मेरीः फ्लैप से उद्धृत।
7. शमशेरः टूटी हुई बिखरी हुई, कुछ और कविताएँ, पृ0 52
8. शमशेरः हमारी जमीन, इतने पास अपने, पृ0 31
9. वही, पृ0 32
10. केदारनाथ सिंह : त्रिलोचन प्रतिनिधि कविताएँ राजकमल पेपरवैकस, सं, 2014 भूमिका, पृ0 7
11. आचार्य त्रिलोचन : 'दिगन्त' राजकमल प्र0, नई दिल्ली, सं0 2006, पृ0 59
12. डॉ0 केदारनाथ सिंह : मेरे समय के शब्द, 1993, पृ0 84
13. त्रिलोचन शास्त्री : मेराघर, राजकमल प्र0, 2002, पृ0 13